संविधान संवाद शृंखला – 25

बंधुता : अर्थ और व्यवहार

विकास संवाद

शीर्षक
बंधुता : अर्थ और व्यवहार
(संविधान संवाद शृंखला – 25)

लेखक
सचिन कुमार जैन

संपादन
पूजा सिंह

संपादन सहयोग
राकेश कुमार मालवीय, रंजीत अभिज्ञान, पंकज शुक्ला

संस्करण – प्रथम

वर्ष – 2023

प्रतियां – 1000

सहयोग राशि
छात्रों के लिए – ₹ 20
नागरिकों के लिए – ₹ 25
संस्थाओं के लिए – ₹ 30

मुद्रक – अमित प्रकाशन

सज्जा – अमित सक्सेना

प्रकाशक
विकास संवाद
ए–5, आयकर कॉलोनी, जी–3, गुलमोहर कॉलोनी,
बावड़िया कलां, भोपाल (म.प्र.) – 462039. फोन : 0755–4252789
ई–मेल : office@vssmp.org / www.vssmp.org
www.samvidhansamvad.org

बंधुता : अर्थ और व्यवहार

भारत के नागरिकों के संदर्भ में बंधुता का अर्थ क्या है ?

बंधुता का अर्थ है विविधताओं से भरे इस विशाल देश के सभी नागरिकों में बंधुत्व की भावना यानी भाईचारे और बहनापे की भावना का विकास।

सभी द्वारा एक दूसरे का आदर, परस्पर सम्मान और एक दूसरे की गरिमा का पूरा ध्यान रखना।

यदि देश के सभी नागरिकों में यह भावना रहेगी तभी उनकी व्यक्तिगत गरिमा के साथ-साथ देश के सामूहिक गौरव यानी उसकी एकता और अखंडता का भी समुचित ध्यान रखा जा सकेगा।

इस पुस्तिका के माध्यम से हम यह जान सकेंगे कि डॉ. अम्बेडकर ने बंधुता को इतना महत्वपूर्ण मूल्य क्यों माना ?

संविधान की उद्देशिका में बंधुता

संविधान मसौदा समिति ने 21 फरवरी 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को संविधान का प्रारूप सौंपा था। इस प्रारूप के साथ संविधान सभा के अध्यक्ष को संबोधित पत्र के बिंदु दो में मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने लिखा था, 'संविधान मसौदा समिति ने अन्य सभी मामलों में संविधान के उद्देश्यों के घोषणा-पत्र (जिसे जनवरी 1947 में सभा ने स्वीकार किया था) की भावना को ही उद्देशिका में समाहित करने का प्रयास किया है' (लेकिन) मसौदा समिति ने प्रस्तावना में 'बंधुत्व' के बारे में एक खंड जोड़ा है, हालांकि यह (तत्व) उद्देश्यों के घोषणा पत्र में (दर्ज) नहीं है। मसौदा समिति ने महसूस किया कि भारत में बंधुत्वपूर्ण सौहार्द और सद्भावना की अब से अधिक आवश्यकता पहले कभी नहीं थी और नये संविधान के इस विशिष्ट लक्ष्य पर उद्देशिका में विशेष उल्लेख करके जोर दिया जाना चाहिए।'

एक तरफ डॉ. अम्बेडकर समाज के उपेक्षित-वंचितों और जाति व्यवस्था से प्रताड़ित व्यक्तियों की सामाजिक स्वाधीनता के लिए सामने से लड़ाई लड़ रहे थे, वहीं दूसरी तरफ यह घोषणा भी करते जा रहे थे कि न्याय, समता और बंधुता को अपनाकर ही भारत एक नया रूप हासिल कर सकता है।

बंधुता का अर्थ

बंधुता का अर्थ क्या है? क्या इसका केवल यही अर्थ है कि एक बस्ती में सभी लोग मिलजुल कर रहें? अगर मान लिया जाए कि इसका अर्थ इतना ही है तो भी क्या यह लक्ष्य अपने अहंकार और भीतर की हिंसा को नियंत्रित किए बिना हासिल किया जा सकता है? समाज में मौजूद आर्थिक, जाति और लैंगिक विभाजन के होते हुए क्या बंधुता की कल्पना भी की जा सकती है?

निश्चित रूप से देश और दुनिया का कोई भी समाज इस बात से इनकार नहीं करेगा कि समाज में बंधुता होनी चाहिए। इतना ही नहीं हर व्यक्ति यह भी दावा कर सकता है कि बंधुता तो है ही; इसे खोजने की कोई जरूरत नहीं है।

अपने आसपास ईमानदार और निरपेक्ष नज़र डालें तो पायेंगे कि आज के भारतीय समाज में बंधुता का दायरा भी साम्प्रदायिक और जातिवादी है। हिन्दू व्यक्ति की बंधुता हिन्दू के साथ है और मुसलमान व्यक्ति की मुसलमान के साथ। ईसाई की ईसाई के साथ है और पारसी की पारसी के साथ। ज्यादा गहराई में जायेंगे तो पायेंगे कि हिन्दुओं में भी ब्राह्मणों की ब्राह्मणों के साथ बंधुता है और मुस्लिमों में शिया की शिया के साथ और सुन्नी की सुन्नी मुसलमान के साथ।

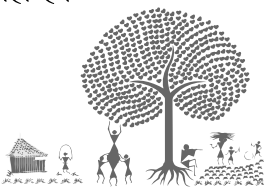

अगर कोई शक है तो ज़रा देखिए कि जब कोई भी समुदाय बच्चों की शिक्षा के लिए सामुदायिक कोष बनाता है, तब वह किन बच्चों को छात्रवृत्ति प्रदान करता है? किन परिवारों को आपदा-संकट के समय आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है?

यह बंधुता का भाव तो नहीं ही है, यह केवल स्वार्थ पूर्ति के लिए बंधुता का रणनीतिक प्रयोग है।

बंधुता, लोकतंत्र, स्वतंत्रता और समानता का अंतर्संबंध

डॉ. अम्बेडकर बंधुता, लोकतंत्र, स्वतंत्रता और समानता को एक दूसरे से गुथे हुए सिद्धांत के रूप में परिभाषित करते हैं।

अपनी पुस्तक
'जाति का विनाश' (पृष्ठ 78–79) में
उन्होंने लिखा है, 'बंधुता पर किसी को क्या आपत्ति हो
सकती है? एक आदर्श समाज को गतिशील होना चाहिए, वह
ऐसे माध्यमों से भरा हुआ होना चाहिए, जो एक हिस्से में होने वाले
परिवर्तन को दूसरे हिस्से में ले जाने में सक्षम हो। दूसरे शब्दों में सामाजिक
अंतराभिसरण (भीतरी संचरण) अनिवार्य है। बंधुत्व यही है, जिसका
दूसरा नाम लोकतंत्र है। लोकतंत्र सिर्फ शासन संचालित
करने की एक शैली नहीं है। बुनियादी रूप से यह सम्मिलित
जीवन जीने की, संयुक्त रूप से संप्रेषित
अनुभव की एक विधि है।'

सार यह है कि अपने साथ रहने वालों के प्रति सम्मान और श्रद्धा की भावना ही बंधुता है। इसका मतलब है कि बंधुत्व का उपयोग तभी किया जा सकता है, जब मन में उसका निवास हो, जब प्रेम हो और दूसरों की स्वतंत्रता में हमें विश्वास हो।

वे अगले खंड में 'स्वतंत्रता' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, 'स्वतंत्रता को लेकर कोई आपत्ति? कहीं पर भी आने-जाने, जीवित रहने, अंगहीन हुए बगैर जीवित रहने, संपत्ति, औज़ार या कच्चा माल रखने की स्वतंत्रता पर किसी को कोई आपत्ति नहीं है। क्या जाति व्यवस्था के समर्थक इस 'स्वतंत्रता' में विश्वास रखते हैं? जब लोगों को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता देने की बात आएगी, तब वे इस अर्थ में स्वतंत्रता की अनुमति देने के लिए तुरंत तैयार नहीं होंगे। व्यवसाय चुनने की इस तरह की स्वतंत्रता पर आपत्ति करना दासता को

जारी रखना है। दासता गुलामी का केवल विधि-सम्मत रूप ही नहीं है, यह ऐसा चरण है, जिसमें कुछ लोग, दूसरों के आचरण-जीवन को नियंत्रित करता है। यह व्यवस्था वहां भी पायी जाती है, जहां कानूनी अर्थ में दासता जैसी कोई चीज़ नहीं है; जैसे उदाहरण के लिए जाति व्यवस्था में, कुछ लोगों को ऐसे व्यवसायों में बने रहना पड़ता है, जो उन्होंने खुद नहीं चुने हैं।' मतलब यह है कि अगर हमारे समाज में व्यक्ति को अपने आराध्य की पूजा करने, अपने सामाजिक व्यवहारों और अपने रूचि के व्यवसाय के विकल्प को अपनाने की ही स्वतंत्रता नहीं है, तो यह कैसे मान लिया जाए कि भारतीय समाज में बंधुता का भाव है?

समानता के बारे में डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि 'किसी न किसी कारण असमानता तो हो ही सकती है; जैसे शारीरिक अनुवांशिकता के कारण, सामाजिक विरासत या संपत्ति के कारण, शिक्षा-वैज्ञानिक ज्ञान के कारण और किसी भी व्यक्ति का अपने स्वयं के विशेष प्रयत्न या प्रयासों से हासिल स्थिति के कारण विशेष क्षमता या स्थिति प्राप्त हो सकती है। मनुष्यों की स्थिति निश्चित रूप से समान नहीं हो सकती है। प्रश्न यह है कि चूंकि वे असमान हैं, इसलिए क्या हम उनके साथ असमान व्यवहार करेंगे?

डॉ. अम्बेडकर के तर्क का अर्थ यह है कि अगर किसी व्यक्ति को विरासत में धन-संपत्ति नहीं मिलती है या किसी व्यक्ति को शिक्षा में रुचि नहीं रही और वह शिक्षा हासिल नहीं कर पाया तो क्या उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाना चाहिए? अगर किसी अभाव के कारण एक व्यक्ति क्षमता हासिल नहीं कर पाया, तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि उसे फिर क्षमता हासिल करने के अवसर ही नहीं मिलना चाहिए!'

डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं, 'मनुष्यों के साथ न्याययुक्त व्यवहार कितना ही तर्कसंगत हो, (फिर भी) मानवता का पृथक्करण या वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है; इसलिए व्यवस्था को किसी न किसी नियम का पालन करना होता है, और वह नियम यह है कि सभी मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जाए – इसलिए नहीं कि वे एक जैसे हैं, बल्कि इसलिए कि मानवता का पृथक्करण और वर्गीकरण असंभव है।'

समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुता को अलग-अलग करके नहीं देखा-समझा जाना चाहिए। जब बंधुता होगी, तभी न्याय हो सकता है और जब स्वतंत्रता होगी, तभी तो समानता और बंधुता हो सकती है। इन संबंधों को उलट-पलटकर देखते रहने की जरूरत है।

> भारतीय संविधान की उद्देशिका में बंधुता, न्याय, स्वतंत्रता और समानता के मूल्यों को शामिल करने के पीछे शायद यह विश्वास रहा होगा कि इन चार तत्वों को नये भारत की सभ्यता का मूल तत्व बनाने से सामाजिक विभाजन समाप्त हो सकता है। उन्होंने चार मई 1936 को नागपुर कैम्प की एक सभा में कहा, 'जिस धर्म में समानता, प्रेम और बंधुता की भावना नहीं है, उस धर्म को मैं अपना धर्म कहने को तैयार नहीं हूं।'

डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि जाति व्यवस्था का बचाव इस तर्क के आधार पर किया जाता है कि यह श्रम विभाजन का ही दूसरा नाम है और इसमें कोई बुराई नहीं है। सच तो यह है कि जाति व्यवस्था श्रम का विभाजन नहीं करती, यह श्रमिकों का विभाजन करती है। यह अप्राकृतिक विभाजन है क्योंकि यह व्यवस्था एक वर्ग के श्रमिकों को दूसरे वर्ग के श्रमिकों में शामिल नहीं होने देती है। यह ऊंच-नीच की व्यवस्था है। यह विभाजन प्राकृतिक नहीं है। सामाजिक और व्यक्तिगत दक्षता का सिद्धांत यह कहता है कि किसी भी व्यक्ति की क्षमता को उस स्तर तक बढ़ने दें कि वह अपना व्यवसाय चुन सके और उसमें आगे

बढ़ सके। जाति व्यवस्था इस सिद्धांत का उल्लंघन करती है। इस व्यवस्था में निजी भावना और निजी प्राथमिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। वे कहते हैं इस व्यवस्था के आधार पर बनी औद्योगिक प्रणाली से उपजी गरीबी और पीड़ा सबसे बड़ी बुराइयां नहीं है। सबसे बड़ी बुराई यह है कि इस व्यवस्था में इतने सारे लोग ऐसे व्यवसायों में लगे हुए हैं, जो उन्हें कतई पसंद नहीं हैं। ऐसे व्यवसाय व्यक्ति में लगातार विरुची, दुर्भावना और पलायन की इच्छा पैदा करते रहते हैं।

बंधुता के भाव की गहराई डॉ. अम्बेडकर द्वारा 1942 में बम्बई आकाशवाणी केंद्र से दिए गये भाषण से भी स्पष्ट होती है। दूसरे विश्व युद्ध के इस काल में इंडियन इन्फार्मेशन में एक जनवरी 1942 को प्रकाशित इस भाषण में उन्होंने कहा, 'श्रमिकों को यह बात ज्ञात है कि यदि यह युद्ध 'नई नाज़ी व्यवस्था' के विरुद्ध है तो यह पुरानी व्यवस्था के पक्ष में भी नहीं है। श्रमिक इस बात से अवगत हैं कि इस युद्ध की क्षतिपूर्ति तभी होगी जब ऐसी नई व्यवस्था स्थापित की जाए, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुता मात्र नारे के रूप में न रहें, बल्कि जीवन की सच्चाई बन जाएं।'

निश्चित रूप से बंधुता की धुरी पर केंद्रित समाज प्राकृतिक रूप से स्थापित नहीं हो सकता है। इसके लिए संघर्ष भी करना होगा। 11 अप्रैल 1925 को बम्बई क्षेत्र प्रदेश बहिष्कृत परिषद के अधिवेशन में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, 'सभी को परस्पर बराबरी के संबंध रखने चाहिए, एक-दूसरे की समयानुसार मदद करनी चाहिए, जिससे समाज में प्रेमभाव पैदा हो सके। इसी तरह हमें अपना आचरण रखना चाहिए। यही समाज रचना का बुनियादी उद्देश्य है। (लेकिन) जिस समय समाज के कुछ लोग शक्तिशाली होकर दूसरों पर जुल्म ढाने लगते हैं, उस समय समाज रचना का यह उद्देश्य सफल नहीं होता। जब कभी ऐसा दिखाई दे तो उस समय बिना घबराये सभी काम छोड़कर बहुत दृढ़ता के साथ

सत्ता के नशे में चूर लोगों की चोटी पकड़कर जमीन पर पटकना समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।' इसका अर्थ है कि बंधुता अपनाने का मतलब अपने अस्तित्व, अपनी गरिमा और स्वतंत्रता का त्याग करना नहीं होता है। शिक्षा और सम्मान के हासिल होने के साथ ही सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सक्षमता भी बंधुता का वातावरण बनाती हैं। जब व्यवस्था में ही यह भाव हो कि सामाजिक-आर्थिक रूप से कमज़ोर व्यक्ति या समुदाय के साथ अन्याय किया जा सकता है, तो फिर बंधुता कैसे स्थापित हो सकती है? इसका मतलब है कि समानता और सक्षमता भी बंधुता को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने बम्बई आकाशवाणी केंद्र (जनवरी 1942) के अपने भाषण में कहा था, 'श्रमिक को स्वतंत्रता चाहिए, इसमें कोई नई बात नहीं है। इसमें नयापन है श्रमिक की दृष्टि में स्वतंत्रता का आशय। श्रमिक के विचार से, स्वतंत्रता का अर्थ सिर्फ बंधन हटाने का नकारात्मक अर्थ नहीं है। न ही इसका अर्थ श्रमिक को केवल वोट देने के अधिकार से है। श्रमिक ऐसी सरकार चाहता है, जो नाम और काम से भी जनता की सरकार हो। वह समान काम का अवसर चाहता है, वह सरकार से हर व्यक्ति के लिए उनकी जरूरत के अनुसार बेहतरी के लिए पूरी सुविधा चाहता है। समानता से श्रमिक का आशय सिविल सेवा, सेना, कराधान, व्यवसाय और उद्योग में हर प्रकार के विशेषाधिकार समाप्त करना है; वस्तुतः ऐसी समस्त प्रक्रियाओं को समाप्त करना, जिनसे असमानता उत्पन्न होती है। श्रमिक बंधुता चाहता है। बंधुता से उसका अर्थ बंधुता के ऐसे सभी मानवीय उद्देश्य हैं, जो पृथ्वी पर मनुष्य मात्र के प्रति शांति और सद्भावना से लक्ष्य की ओर ले जाने के आदर्श के साथ सभी श्रमिकों और राष्ट्रों को एकीकृत करने वाले हों।'

बंधुता और मैत्री : समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर अपनी पुस्तक 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' में गौतम बुद्ध से जुड़ी एक कहानी का उल्लेख करते हैं – शाक्य समुदाय (इसी समुदाय में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था) में 'वप्रमंगल' नाम का एक ग्रामीण पर्व मनाया जाता था। यह एक प्रथा थी, जिसमें हर शाक्य को अपने हाथों से हल जोतना होता था और खेत में काम करना होता था। सिद्धार्थ गौतम ने इस प्रथा का हमेशा पालन किया क्योंकि उनका मानना था कि हम जीवन में कुछ भी करें, कुछ भी हों, हर अवस्था में शारीरिक श्रम सबसे सम्माननीय है।

एक बार सिद्धार्थ अपने पिता के खेतों पर गये। वहां उन्होंने देखा कि कई मजदूर खेतों पर श्रम कर रहे हैं, खेत जोत रहे हैं, पानी रोकने के बांध बना रहे हैं लेकिन भीषण धूप में भी उनके शरीर पर पूरे कपड़े नहीं हैं। यह देखकर उन्हें पीड़ा होती थी। तब उन्होंने अपने मित्रों से कहा कि 'क्या यह उचित है कि एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करे? यह कैसे ठीक हो सकता है कि मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मजदूरी के परिणामों से जीवन का आनंद उठाये?'

दूसरी घटना यह है कि सिद्धार्थ गौतम समाज के योद्धा समूह (क्षत्रिय) से संबंध रखते थे। उन्हें शस्त्रों को चलाने की शिक्षा प्रदान की गयी थी, लेकिन उनका सोचना था कि किसी भी प्राणी को अनावश्यक पीड़ा और आघात नहीं पहुंचाना चाहिए। जब उनके मित्र शिकार करने जाते, तो सिद्धार्थ गौतम उनके साथ शिकार पर जाने से हमेशा इंकार कर देते थे। उनके मित्र कहते कि तुम भले शिकार मत करना, लेकिन यह देखने के लिए तो चलो को तुम्हारे मित्रों का निशाना कितना अचूक है? सिद्धार्थ इसका उत्तर देते कि – मैं निर्दोष प्राणियों का

वध होते देखना भी पसंद नहीं करता हूं।

सिद्धार्थ गौतम के इस स्वभाव को देखकर उनकी मां (प्रजापति गौतमी) उनसे कहती कि 'तुम एक क्षत्रिय हो और लड़ना तुम्हारा कर्तव्य है। युद्ध कौशल शिकार के जरिये ही सीखा जा सकता है।' तब सिद्धार्थ उनसे कहते कि 'मां, एक खत्तिय (क्षत्रिय) को क्यों लड़ना चाहिए?' गौतमी कहती कि 'क्योंकि यह उनका कर्तव्य है। इसी से राज्य की सुरक्षा होती है'। तब सिद्धार्थ कहते कि 'लेकिन मां, यह बताओ की एक आदमी का कर्तव्य यह कैसे हो सकता है कि वह दूसरे आदमी को मारे! यदि सब क्षत्रिय एक दूसरे से प्रेम करें, तो क्या बिना किसी को मारे वे राज्य की सुरक्षा नहीं कर पायेंगे?'

सिद्धार्थ के सहज-साधारण प्रश्न बहुत कुछ सोचने पर विवश करते हैं। ये तथा ऐसे ही कुछ अन्य साधारण सवाल हैं जिन्हें बार-बार पूछे जाने की आवश्यकता है। मसलन इंसान गाय, घोड़े, श्वान को प्रेम करता है, उसका सम्मान करता है और उसे स्पर्श करता है, लेकिन जाति या सम्प्रदाय के आधार पर दूसरे इंसान से दुर्भावना क्यों रखता है? उसे अछूत क्यों मानता है? इंसान मूल्यवान धातुओं को हर कीमत पर हासिल करना चाहता है, लेकिन प्रेम और सौहार्द के प्रति उदासीन रहता है, इन्हें मूल्यहीन मानता है; ऐसा क्यों होता है? प्रकृति ने अलग-अलग प्रजातियों के बीच संसर्ग और सामाजिकता की व्यवस्था नहीं बनाई है, इसीलिए इंसान और किसी पशु के बीच शारीरिक रिश्ते नहीं होते हैं, लेकिन ऐसे नियम बनाए गये कि इंसान और इंसान के बीच भी संबंध नहीं हो सकते हैं, क्या यह प्राकृतिक सिद्धांत हो सकता है? समाज में जाति के आधार पर एक हिस्से को पशु सरीखा या पशु से भी निकृष्ट माना गया है। प्राकृतिक वातावरण, अनुवांशिकी और जैविकीय गुणसूत्रों के आधार पर इंसानों की चमड़ी का रंग अलग-अलग होता है, उनके चेहरे की बनावट में प्राकृतिक अंतर होता है, लेकिन क्या उनके रक्त के रंग में, उनके शरीर की संरचना की मूलभूत तंत्र में कोई भिन्नता होती है? यही प्रश्न भारतीय संविधान में बंधुता, समानता, न्याय, व्यक्ति की स्वतंत्रता को आधारभूत मूल्य मानने के पीछे सबसे ठोस आधार थे।

वर्तमान भारत एक स्वतंत्र भौगोलिक दायरे में स्थापित देश होने के साथ-साथ जातियों और सम्प्रदायों में विभाजित देश भी है। सबसे पहले चार वर्ण, फिर चार हज़ार जातियां, फिर विविध सम्प्रदाय; इनमें एकता की भावना कमज़ोर होती गयी है। अगर मूलभूत मानवीय मूल्यों की दृष्टि से देखा जाए तो भारत के धर्म और संस्कृतियां असत्य, हिंसा, शोषण और असमानता के संदेश नहीं देते हैं; लेकिन उनकी राजनीतिक-सामाजिक व्याख्याओं ने समाज से मूलभूत मूल्यों का त्याग करा दिया।

ये विभाजन प्राकृतिक नहीं हैं। यह विभाजन किया गया है और भारतीय समाज का पहला विभाजन ब्रिटिश साम्राज्य की कूटनीति के लागू होने से कहीं पहले हो चुका था। उस पहले विभाजन ने ही दूसरे विभाजन की आधारशिला रखी। अगर एका और बंधुता होती, तो गुलामी भारत में किस रास्ते आती? बंधुता का अर्थ खंडित शरीर को जोड़ना नहीं होता है, बल्कि विविधता के साथ खंडित होने से संरक्षित करना होता है। यही कारण है कि नये भारत के निर्माण के लिए महात्मा गांधी अहिंसा और सहिष्णुता की बात कर रहे थे और डॉ. बी.आर. अम्बेडकर बंधुता को अनिवार्य मान रहे थे। डॉ. अम्बेडकर के लिए बंधुता के बहुत गहरे और व्यापक अर्थ थे। सभी जानते हैं कि वे सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा के अधिकार को बहुत जरूरी मानते थे, लेकिन उन्होंने स्वयं बौद्ध दर्शन की व्याख्या करते हुए यह पाया कि शिक्षा से आगे प्रज्ञा, प्रज्ञा से आगे शील, शील से आगे करुणा और करुणा से आगे मैत्री का व्यवहार जरूरी है।

बंधुता : प्रज्ञा, शील, करुणा और मैत्री

प्रज्ञा, शील, करुणा और मैत्री के क्या सह-संबंध हैं, इस प्रश्न का उत्तर पाने का प्रयास डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने बौद्ध दर्शन के माध्यम से किया। अपनी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध और उनका धम्म' में उन्होंने उल्लेख किया है कि केवल विद्वान होना पर्याप्त नहीं है। कोई आदमी चाहे पंडित हो और चाहे अपंडित, यदि वह स्वयं को महान समझकर दूसरों को तुच्छ समझता है, तो वह उस अंधे की तरह है, जो स्वयं अंधा होकर दूसरों को मशाल दिखाता है। इसी तरह शिक्षा के साथ प्रज्ञा और प्रज्ञा के साथ शील होना अगली अनिवार्यता है। वे कहते हैं कि शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक है। ज्ञान का उपयोग आदमी के 'शील' पर निर्भर करता है। बौद्ध दर्शन मानता है कि धम्म तभी सार्थक होता है, जब प्रज्ञा, शील के साथ साथ करुणा को अनिवार्य रूप से धारण करता है।

गौतम बुद्ध एक बार गांधार गये। वहां बहुत भयंकर बीमारियों से पीड़ित एक साधु था। वह जहां भी बैठता, वह जगह प्रदूषित हो जाती थी। उसके पास कोई नहीं जाता था। जब बुद्ध वहां पहुंचे तो वे उस साधु के पास गये, शुक्रदेव से पानी मंगाया और उस साधु के शरीर को धोया। उसकी सेवा की। उसी समय पृथ्वी कांपी और अलौकिक प्रकाश फ़ैल गया। तब राजा, मंत्री समेत कई लोग वहां पहुंचे और उनसे पूछा कि इतने महान होकर भी आपने इतना सामान्य काम क्यों किया? इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया – संसार में आने का तथागत का उद्देश्य ही दरिद्रों, असहायों और अरक्षितों का मित्र बनना है, रोगियों की सेवा करना है, फिर चाहे वे किसी भी धर्म के हों। इसके साथ ही दरिद्रों, अनाथों और बूढों की सहायता करना तथा दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना ही तो उद्देश्य है। यह तो करुणा का तत्व है।

करुणा के आगे वे 'मैत्री' की बात कहते हैं। उनके अनुसार 'करुणा' का अर्थ मानव मात्र से प्रेम करना है, जबकि 'मैत्री' का अर्थ है सभी प्राणियों से प्रेम करना। 'मैत्री' के बारे में बताते हुए उन्होंने भिक्खुओं से कहा 'मान लो एक आदमी पृथ्वी खोदने के लिए आता है, तो क्या पृथ्वी उसका विरोध करती है?' भिक्खुओं ने उत्तर दिया – नहीं भगवन! बुद्ध ने दूसरा प्रश्न किया – मान लो एक आदमी लाख और दूसरा रंग लेकर आये और वायु में चित्र बनाना चाहे, तो तुम क्या समझते हो कि वह चित्र बना सकेगा?' भिक्खुओं ने उत्तर दिया – नहीं भगवन! मान लो एक आदमी जलती हुई मशाल लेकर गंगा नदी में आग लगाने आये, तो क्या वह आग लगा सकेगा? भिक्खुओं ने उत्तर दिया – नहीं भगवन! क्योंकि गंगा–जल में जलने का गुण नहीं है। तब बुद्ध ने कहा कि जैसे पृथ्वी आघात अनुभव नहीं करती और विरोध नहीं करती। जैसे हवा में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती, जैसे गंगा नदी का जल अग्नि से अबाधित होकर बहता रहता है, उसी प्रकार हे भिक्खुओं, यदि तुम्हारे साथ कोई अन्याय भी करे, तो भी तुम अपने विरोधियों के प्रति मैत्री भावना बनाए रखना। मैत्री की धारा प्रवाहित और सदा प्रवाहित ही रहना चाहिए। तुम्हारा यह पवित्र कर्तव्य रहे कि तुम्हारा मन पृथ्वी की तरह दृढ़ हो, वायु की तरह स्वच्छ हो और गंगा नदी की तरह गंभीर हो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हारी मैत्री आसानी से बाधित नहीं होगी। चाहे कोई तुम्हारे साथ अप्रिय व्यवहार ही क्यों न करे, जो भी तुम्हें हानि पहुंचाएंगे, वे स्वयं शीघ्र थक जायेंगे। वे कहते हैं कि मैत्री की परिधि विश्व की तरह असीम होना चाहिए, भावना विशाल हो, जिसे मापा भी न जा सके और जिसमें द्वेष का विचार भी पैदा न होने पाए। मेरे धम्म के अनुसार 'करुणा' का अभ्यास की पर्याप्त नहीं है। मैत्री का अभ्यास किया जाना भी आवश्यक है।

वे विदेसिका नाम की संपन्न स्त्री की कहानी कहते हैं। विदेसिका बहुत सुशील, विनम्र और बहुत मृदुभाषी थी। उसकी एक नौकरानी थी, जिसका नाम काली था। वह बहुत कर्मठ, परिश्रमी और मेहनती थी। एक दिन काली ने सोचा कि मेरी मालकिन को जिन गुणों के कारण जाना जाता है, क्या वे गुण वास्तव में उनमें हैं? यह जांचना चाहिए। क्या सच में उन्हें क्रोध नहीं आता है? यही परीक्षा

लेने के लिए काली अगले दिन सुबह देर से जागी। मालकिन बोली 'तू इतनी देर से क्यों उठी?' तो काली ने कहा 'मालकिन कोई बात नहीं!' इस पर मालकिन ने गुस्से में कहा 'दुष्ट, कहती है कोई बात नहीं!' अगले दिन फिर काली देर से सोकर उठी। मालकिन और गुस्सा हुई। काली ने सोचा कि ऐसा नहीं है कि मालकिन के भीतर द्वेष-क्रोध-हिंसा नहीं है। क्रोध और हिंसा तो उसमें भरी हुई है, चूंकि वह खुद बहुत मेहनत करती है, सुबह बहुत जल्दी उठकर सब काम अच्छे से करती है, बस इसीलिए मालकिन का गुस्सा बाहर नहीं दिखता है। तीसरे दिन काली थोड़ी और देर से सोकर उठी। इस बार विदेसिका ने दरवाजे का अर्गल निकालकर काली के सिर पर मार दिया। उसके सिर से खून बहने लगा। वह खूब रोने लगी। पड़ोसी आ गये। उन्होंने पूरी घटना के बारे में सुना तो फिर विदेसिका हिंसक, क्रोधी के रूप में मशहूर हो गयी। इसके बाद तथागत ने कहा कि मैं उस भिक्खु को मैत्री भाव संपन्न नहीं कहता, जो केवल भोजन-वस्त्र प्राप्त करने के लिए मैत्री प्रदर्शित करता है। कोई भिक्खु भी तभी तक सुशील, शांत और विनम्र रह सकता है, जब तक उसके विरुद्ध कोई अप्रिय बात नहीं कही जाए। किसी भिक्खु में मैत्री है या नहीं, इसकी परीक्षा तभी होती है, जब उसके विरुद्ध निंदाजनक बातें कही जाएं। कोई भी पुण्य कर्म मैत्री भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है। मैत्री तो चित्त की विमुक्ति है। यह उन सबको अपने में समेट लेती है, यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है। डॉ. अम्बेडकर बुद्ध के इस सिद्धांत को मानव जीवन का आधार मानते हैं कि सबसे मैत्री करो, ताकि तुम्हें किसी प्राणी को मारने की इच्छा ही न हो।

बंधुता एक सामाजिक-राजनैतिक स्वभाव के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। यह महज एक सुंदर बात ही नहीं है। इसके बिना एक सभ्य समाज का निर्माण हो ही नहीं सकता है। संभव है कि कुछ धर्म ग्रंथों में महान बातें कहीं गयी हों। प्रकृति का अद्‌भुत वर्णन हो। संस्कृति के गीत बहुत संगीतमय हों और वास्तुकला-मूर्तिकला अद्‌भुत हो। अगर इसी समाज के लोगों में मूलभूत बंधुता न हो, तो उन धर्मग्रंथों, संस्कृति और स्थापत्यकला का होना निरर्थक ही तो होगा। बंधुता का ह्रास होते जाना ही आज के भारत की सबसे बड़ी चुनौती है।

मैत्रीपूर्ण बंधुता का जीवन

भारतीय या विश्व की भी सामाजिक व्यवस्था में मैत्रीपूर्ण बंधुता के मूल्यों को सबसे बड़ी चुनौती व्यक्ति, समुदाय और सम्प्रदायों की इस अहंमन्यता से मिलती है कि उन्हें सबसे महत्वपूर्ण माना जाए, उनकी प्रशंसा की जाए और उनके मत की प्रभुता को स्वीकार किया जाए। उनका यह स्वभाव होता है कि यदि वे किसी अन्य व्यक्ति या समुदाय या मत को अहमियत देंगे और सम्मान करेंगे, तो उनकी अपनी अहमियत घट जायेगी। प्रभुता की अपेक्षाओं के कारण से अलगाव पैदा होता है।

'स्व' को महत्व सबसे बड़ी चुनौती

सबसे प्रभावी चुनौती है किसी भी व्यक्ति, समूह या सम्प्रदाय का स्वयं को सबसे महत्वपूर्ण मानना। इतना तो सभी जानते हैं कि दो लोगों या दो समूहों के बीच में भिन्नता होती है। किसी भी जीवंत समाज में उतनी ही विविधता होती है, जितने के लोग होते हैं, पशु-पक्षी और वनस्पति की प्रजातियां होती हैं। इस विविधता के बीच सम्मानजनक सामंजस्य मैत्री से ही स्थापित हो सकता है। इसके अलावा कोई और विकल्प है ही नहीं।

बंधुता : कुछ सूत्र

- अलग-अलग व्यक्तियों और समूहों के विचार और व्यवहार अलग-अलग हो सकते हैं। उनके बीच किसी बात पर असहमति भी हो सकती है और विवाद भी हो सकता है। जब ऐसी अवस्था होती है तो समूहों में उस बहस या चर्चा या विवाद में शामिल व्यक्तियों या समूहों के मन में क्या होता है?
- अगर बहस हो गयी है तो जरूरी हो जाता है कि आवाज को धीमा किया जाए। तब प्रश्न होता है कि आवाज को धीमा करने की पहल कौन करेगा? वो करेंगे या मैं करूंगा?
- अगर विवाद हो गया है तो जरूरी हो जाता है कि उस विवाद को रोका जाए। तब प्रश्न होता है कि विवाद को रोकने की पहल कौन करेगा? वो करेंगे कि मैं करूंगा?

- अगर किसी बात पर झगड़ा हो गया है तो जरूरी हो जाता है कि झगड़े वाली बात को नज़र अंदाज़ किया जाए। तब प्रश्न होता है कि उस बात को नज़र अंदाज़ करके एक कदम पीछे कौन हटेगा?
- इंसान ने ऐसा मान लिया है कि दूसरे व्यक्ति को शांत होना चाहिए। उसे पीछे हटना चाहिए। मैं क्यों शांत होऊं? मैं क्यों पीछे हटूं? मैं तो बिलकुल सही हूं? मैं कमज़ोर नहीं हूं? मैं किसी से भयभीत नहीं हूं?
- व्यक्ति स्वयं को ही सबसे महत्वपूर्ण मानता है और अपेक्षा रखता है कि दूसरे व्यक्ति और समूह भी मुझे महत्वपूर्ण माने।
- ऐसा हो नहीं पाता है, क्योंकि दूसरा व्यक्ति और समूह भी अपने आप को महत्वपूर्ण मानता है। तब टकराव कम कैसे हो?
- व्यक्ति दूसरे से अपेक्षा रखता है कि वह मुझे महत्वपूर्ण माने, लेकिन वह व्यक्ति दूसरे को महत्वपूर्ण नहीं मानना चाहता है। व्यक्ति दूसरे से अपेक्षा रखता है, जो पूरी नहीं हो पाती है।
- व्यक्ति के नियंत्रण में नहीं होता है कि उसकी आकांक्षा और अपेक्षा पूरी हो।

आत्मनियंत्रण का महत्व

स्वयं का व्यवहार व्यक्ति के नियंत्रण में रह सकता है। अगर मैं वास्तव में मानता हूं कि मेरा किसी से विद्वेष नहीं होना चाहिए तो मैं खुद अपने मन से, स्वभाव और व्यवहार से विद्वेष निकाल सकता हूं। यह मेरे नियंत्रण में है। अगर मैं सोचता हूं कि विद्वेष समाप्त हो और दूसरे व्यक्ति को मुझे महत्वपूर्ण मानते हुए समर्पण कर देना चाहिए, तब विद्वेष समाप्त नहीं हो सकता है। क्योंकि ऐसा होना मेरे नियंत्रण में ही नहीं है। व्यक्ति या समूह क्या कर सकते हैं? वे वही कर सकते हैं, जो उनके नियंत्रण में होता है।

जब कोई ऐसा अपेक्षा रखेंगे, जो अपने नियंत्रण में न हो, तो वह अपेक्षा कभी पूरी नहीं हो सकती है। तब दुःख होता है, अवसाद होता है, तब हिंसा का भाव बड़ा हो जाता है और आपसी प्रेम-बंधुता की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं।

पूरी दुनिया में इंसानों ने पहले समुदाय बनाये, धर्म बनाये और फिर खुद ही यह भी तय कर लिया कि उनका अपना समुदाय, अपना धर्म ही सबसे महत्वपूर्ण है। सबसे ऊंचा है। और यह चाहने लगे कि दूसरे लोग, दूसरे समुदाय और दूसरे धर्म मुझे, मेरे समुदाय को और मेरे धर्म को सबसे महत्वपूर्ण और ऊंचा और सच्चा मानें। यह इस अपेक्षा, इस आकांक्षा का पूरा होना कैसे संभव होता? यह अपेक्षा करना व्यक्ति के नियंत्रण में हो सकता है, लेकिन इस अपेक्षा का पूरा होना व्यक्ति के नियंत्रण में नहीं रहा, न कभी यह उसके नियंत्रण में होगा।

तब व्यक्ति के नियंत्रण में क्या है? व्यक्ति के नियंत्रण में है दूसरे व्यक्ति, समुदाय और धर्म के प्रति सम्मान का भाव रखना। उनके विचारों और दर्शन को स्थान देना। जब मैं किसी दूसरे व्यक्ति के धर्म और विश्वास को स्थान दूंगा, तब स्वाभाविक रूप से दूसरा व्यक्ति भी मेरे धर्म और विश्वास को सम्मान देगा। जो बोया जाता है, वही उगता है और जो उगता है, वही हमारे हिस्से में आता है। अगर सम्मान बोयेंगे, तो अपने हिस्से में भी सम्मान ही पायेंगे।

अपने आप को खुद महत्वपूर्ण मानने से कहीं जरूरी होता है, दूसरों को महत्वपूर्ण मानना और दूसरों को यह महसूस करवाना कि हम उन्हें महत्वपूर्ण मानते हैं। जब ऐसा होगा, तो वे भी हमें महत्वपूर्ण मानेंगे।

ज़रा गौर से देखेंगे तो जान पायेंगे। जान पायेंगे कि जब आप कक्षा में होते हैं, तब भी महत्वपूर्ण होने की, बेहतर होने की, तुलना की जद्दोजहद चलती रहती है।

जब धार्मिक सभा में होते हैं, तब भी तय होता है कि कौन महत्वपूर्ण है? जब घर में होते हैं, तब भी पूरी ऊर्जा से यह साबित करने में लगे रहते हैं कि 'मैं' महत्वपूर्ण हूं इसलिए मेरी कही हुई बात या निर्णय को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। उसे कोई चुनौती नहीं दी जाना चाहिए। इसका मतलब है कि कोई प्रश्न

नहीं पूछा जाना जाना चाहिए? कोई शंका नहीं की जाना चाहिए? विवेक का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए? अपने आप को महत्वपूर्ण मानते-मानते, हम एक कठोर सत्ता व्यवस्था खड़ी कर देते हैं। जहां वही निर्णय लेता है, जो सबसे प्रभावशाली मान लिया जाता है। ऐसी सत्ता व्यवस्था में व्यक्ति अपने महत्व को अपने ज्ञान, अनुभव, अच्छे व्यवहार, सहिष्णुता और करुणा के कारण स्थापित नहीं करता है। वह अपने आप को स्थापित करता है, अपने बाहुबल के कारण, अपने पद स्थान के कारण, अपने पुरुष होने के कारण! जब 'मैं' या 'मेरा' का स्थान बहुत फैलता जाता है, तब रिश्तों का दायरा बहुत सिमटता जाता है। ऐसे में बस अभ्यास यही होता है कि हम पहल करें, हम 'दूसरों को, दूसरों के मत और विश्वास' को स्थान दें, 'हम उन्हें अहसास करवाएं कि वे महत्वपूर्ण हैं'; ऐसा करने के लिए अपने अहंकार और बलवान-शक्तिशाली होने के अहंकार को किनारे रखना होता है।

हम ऐसे समाज में हैं, जहां हम यह विश्वास करते हैं कि हमारी अपनी भावनाएं और हमारा अहंकार ही सर्वोपरि है, दूसरे व्यक्ति या समूह की भावनाएं महत्वपूर्ण नहीं हैं। बस यहीं से जोड़ दरकने लगता है। व्यक्ति-व्यक्ति और समुदाय-समुदाय के बीच बंधुता की डोर बांधने के लिए जरूरी होता है अपने महत्व को महत्वपूर्ण मानने के बजाय, दूसरे को महत्व देना। उनकी भावनाओं और मन:स्थिति को महसूस करना। इससे बंधुता की डोर बहुत मज़बूत हो सकती है।

हमारी व्यवस्था, हमारी पढ़ाई-लिखाई ही ऐसी रही है, जिससे हम यह यह अपेक्षा करना सीख जाते हैं कि मेरी और मेरे मत की ही प्रशंसा की जाए। यह अपेक्षा पूरी नहीं होती है, तब हम दूसरे व्यक्ति और उसके मत को अपना विरोधी मानने लगते हैं। यह समझने की क्षमता ही विकसित नहीं हो पाई कि मेरी या मेरे मत की प्रशंसा और स्वीकार्यता तभी आएगी, जब पहले मैं दूसरे व्यक्ति और उसके मत की प्रशंसा करूंगा।

अगर मैं पहल नहीं करूंगा, तो दूसरे से मेरा जुड़ाव तो होगा ही नहीं और जब जुड़ाव होगा ही नहीं, तब हममें एक दूसरे की प्रशंसा करने की, सम्मान करने की अवस्था निर्मित कैसे होगी?

बहुत छोटी सी बातें हैं,
जिन्हें उलट-पलट करने की जरूरत है। सोचिए आप दूसरे व्यक्ति को खारिज करें, और 'अपेक्षा' करें कि वह आपको स्वीकार करे; यह कैसे होगा? आप किसी अन्य व्यक्ति के मत और विश्वास का अपमान करें और साथ ही यह 'अपेक्षा' करें और उम्मीद रखें कि वह आपके मत और विश्वास का सम्मान करे; यह कैसे संभव होगा? ऐसी ही असम्भावना में विश्वास रख के लोग अपने जीवन से बंधुता और मैत्री को काट फेंकते हैं।

(किसी भी अन्य व्यक्ति, समूह या मत का) सम्मान करने, (किसी भी अन्य व्यक्ति या समूह की) सराहना करने, और (किसी भी अन्य संस्कृति, विचार और विचार को) स्थान देने शुरुआत तो स्वयं ही करना होती है और इस पहल को एक जीवन मूल्य की तरह अपना लेना होता है।

हालांकि यह एक प्राकृतिक सिद्धांत है कि व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है, वैसा ही वह प्राप्त भी करता है। फिर भी दूसरों के साथ अपने व्यवहार में यह आकांक्षा छिपी नहीं होना चाहिए कि इसके एवज में हमें भी वैसा ही या उससे ज्यादा प्रशंसा या सम्मान मिलेगा, क्योंकि ऐसी आकांक्षा का होने पर बंधुता नहीं हो सकती है। हम ऐसा नहीं कर सकते हैं कि अपनी प्रशंसा करवाना है, इसलिए दूसरे की प्रशंसा करें। इसके साथ ही 'विवेक' भी एक जीवन मूल्य की तरह ही अपनाना होता है।

विवेक का व्यवहार तभी हो सकता है, जब हम व्यक्ति को, विषय को, धर्म को गहराई से जानेंगे। जब जान लेते हैं, तब समीक्षा भी कर सकते हैं और जब समीक्षा करते हैं, तब असहमत भी हुआ जा सकता है। इस अवस्था में आने के बाद, जब हम असहमत होते हैं, तब हम किसी के दुश्मन नहीं बनते हैं। तब हम

विवेक के सुरक्षा कवच में होते हैं। बंधुता का मतलब यह कतई नहीं है कि असहमत नहीं हुआ जा सकता है; असहमत बिलकुल हुआ जा सकता है। किसी गलत बात का विरोध भी किया जा सकता है। शुरुआत दूसरे के महत्व को मानने और उसके मत को जानने से करनी होती है।

जब हम बंधुता को मैत्री के भाव से अपनाते हैं, तब ऐसा विचार मन में नहीं आता है कि मैंने उसकी मदद की है, इसलिए वह अब मेरी मदद करेगा। मैंने उस गरीब व्यक्ति को चार रोटियां दी हैं, इसलिए मेरी महिमा गाई जाना चाहिए और ऐसा करने से मेरे बुरे कर्म समाप्त हो जाते हैं। मैत्रीपूर्ण बंधुता होने का अर्थ होता है उस अहसास का पैदा हो जाना कि मेरे नियंत्रण में क्या है? मेरे नियंत्रण में दूसरे व्यक्ति के साथ प्रेम का व्यवहार करना भी है और हिंसा का व्यवहार करना भी; इन विकल्पों में से जो व्यवहार चुना जाएगा, वही तय करेगा कि हमनें बंधुता को अपनाया या नहीं? अपने सहायक से संवाद करना मेरे नियंत्रण में है। किसी दूसरे व्यक्ति के धर्म या मत का सम्मान करना और कमतर या ख़राब साबित करना भी मेरे नियंत्रण में है, ऐसे में मैं कौन सा पक्ष लेता हूं, यही बंधुता का निर्धारक है। बंधुता या सद्भावनापूर्ण व्यवहार इस अपेक्षा से नहीं किया जा सकता है कि ऐसा करने के बाद मुझे महत्वपूर्ण माना जाने लगेगा।

मैत्रीपूर्ण बंधुता के सूत्र

- दूसरे व्यक्ति, जीव, समूह, समुदाय, मत और संस्कृतियों को महत्वपूर्ण मानना, अहमियत देना।
- उनसे संवाद करना, उनके बारे में जानना और विवेक का उपयोग करते हुए अपना पक्ष तय करना।
- अपने पक्ष को किसी अन्य व्यक्ति या समूह पर नहीं लादना।
- मतों के आधार पर रिश्तों का निर्धारण नहीं करना।
- जब हम ठीक वैसा ही जानने और महसूस करने लगें, जैसा कि दूसरे लोग और समूह सोचते और महसूस करते हैं, तब हमें यह भान हो पायेगा कि वस्तुत: हम एक जैसा ही सोचते हैं। हममें कोई भेद नहीं है।

संविधान संवाद पुस्तिका शृंखला

- संविधान और हम
- भारतीय संविधान की विकास गाथा
- जीवन में संविधान
- भारत का संविधान – महत्वपूर्ण तथ्य और तर्क
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि
- संवैधानिक व्यवस्था : एक परिचय
- संविधान की रचना प्रक्रिया
- संविधान सभा में स्वतंत्रता का घोषणा पत्र
- संविधान की उद्देशिका से परिचय
- भारतीय संविधान
  मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व
- भारतीय संविधान और रियासतें
- संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता
- भारत के संविधान के रोचक किस्से
- भारत का राष्ट्रीय ध्वज : तिरंगे की कहानी
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और भारतीय संविधान
- गांधी का संविधान
- संविधान और आदिवासी
- स्वाधीनता, स्वतंत्रता और संविधान
- संविधान और समाजवाद तथा आर्थिक समानता
- संविधान और सांप्रदायिकता
- संविधान और चुनाव प्रणाली
- संविधान और न्यायपालिका
- संविधान और अल्पसंख्यक
- इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र के होने का मतलब
- बंधुता : अर्थ और व्यवहार

पुस्तकें पाने के लिए संपर्क करें –
vikassamvadprakashan@gmail.com / 0755 - 4252789

'संविधान संवाद' शृंखला क्यों?

जब हम किसी विषय के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन जब हम उसके बारे में जानना शुरू करते हैं तो फिर हर पहलू को टटोलने, जानने और समझने की आवश्यकता और ललक होती है।

भारतीय संविधान से जुड़ी तमाम जानकारियों को जानने की उत्कंठा के कारण ही 'विकास संवाद' ने 'संविधान संवाद शृंखला' आरंभ की है। इसका उद्देश्य संविधान की विकास गाथा को जानना, उसके उद्देश्य को समझना तथा तय लक्ष्यों की प्राप्ति में हम नागरिकों के कर्तव्यों के बोध की पहल करना है।

यह संवैधानिक मूल्यों के आत्मबोध से उन्हें आत्मसात करने तक की यात्रा है।

विकास संवाद

Azim Premji Foundation